RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल.-011/2021-23

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 50, अंक : 10 एक प्रति : 2 रुपये
कुल पृष्ठ : 8
रविवार 4 जून, 2023
विक्रमी सम्वत् 2080, सृष्टि सम्वत् 1960853124
दयानन्दाब्द : 199 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये
आजीवन शुल्क : 1000 रुपये
दूरभाष : 0181-2292926, 5062726
E-mail: apspunjab2010@gmail.com,
www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–50, अंक : 10, 1-4 जून 2023 तदनुसार 21 ज्येष्ठ, सम्वत् 2080 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

हे आनन्दस्वरूप भगवन् हमारी आत्मा में आकर बस जाओ

ले०-आचार्य ज्ञानेश्वरार्य

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा।
मर्य इव स्व ओक्ये।।

ऋग्वेद. १.८१-१३

शब्दार्थ-सोम = हे आनन्द स्वरूप भगवन्, **रारन्धि** = सदा निवास करो, बस जाओ, **नो** = हमारे, **हृदि** = आत्मा में, **गावः न** = जैसे गायें, **यवसेषु आ** = जौ आदि के खेतों में रमण करती है, निवास करती है, **मर्य** = मनुष्य, **इव** = जैसे, **स्व** = अपने, **ओक्ये** = घर में बसता है।

भावार्थ-हे अलौकिक अद्भुत अद्वितीय अपरिमित आनन्द को प्रदान करने वाले सोमदेव! आओ हमारी आत्मा में आकर बस जाओ, इस आत्मा को ही अपना स्थायी निवास बना लो और हमारा सतत मार्ग दर्शन करते रहो। मेरे पथ प्रदर्शक बन जाओ, मेरे शरीर, इन्द्रियों, मन, आत्मा के प्रेरक सारथी आप ही बन जाओ। हे मेरे जीवनदाता! मैं अब तक आपको खोजने के लिए दूर-दूर तक गया। किसी पण्डित ने बताया कि आप उच्च पहाड़ों की बर्फीली चोटी पर बने पवित्र स्थानों पर रहते हो, तो किसी ने कहा कि वह तो घोर घने जंगलों में बनी शान्त गुफाओं के स्थान में मिलता है तो कहीं पढ़ा कि वह तो कल-कल करती नदियों के सुरम्य तटों पर ही दर्शन देता है, तो किसी व्यक्ति से सुना कि उसका तो समुद्र के किनारे पर सतत चल रही उत्तंग तरङ्गों के पास ही बैठ कर अनुभव किया जा सकता है, तो कहीं से पता चला कि उसे प्राप्त करने के लिए इतनी दूर जाने की आवश्यकता नहीं है। वह तो नगर, गाँव के किसी एकान्त स्थान पर बनाये हुए देवालय, मंदिर, गिरिजाघर, उपाश्रम में मिल सकता है।

हे देव! अलग-अलग व्यक्तियों ने अलग अलग स्थान बताये। स्थान ही नहीं आपकी पूजा, अर्चना, स्तुति, प्रार्थना, ध्यान, उपासना, भक्ति के नये-नये विचित्र स्वरूप और विधियाँ बताई। किसी ने कहा कि गाओ, बजाओ, नाचो, कूदो, झूमो तो किसी ने कहा कि नहीं, हिलना-डुलना नहीं है, आसन लगाकर, आँखें बन्द करके बैठने से ही उसकी अनुभूति होती है। तो किसी ने कहा कि आपके दर्शन के लिए धूप, दीप, अगरबत्ती जलाओ जिससे वातावरण तथा चित्त प्रसन्न हो। तो किसी ने बताया कि सुन्दर-सुन्दर फूलों की मालाओं को उसके अर्पित करो तब वह खुश होगा। तो किसी ने अन्न, वस्त्र, मिठाई, रुपया, सोना-चाँदी आदि मूल्यवान् वस्तुएँ उसके लिए समर्पित करके प्रसन्न करने की विधि बताई।

कुछ बुद्धिमानों ने सुझाव दिया कि ईश्वर की पूजा, अर्चना करने के लिए इतना दूर जाने की आवश्यकता नहीं है और न प्रत्येक भक्त का इतना सामर्थ्य है कि हजारों रुपये व्यय करके इतने कष्टों को उठाकर दूर-दूर की यात्रा करे। किसी और अधिक बुद्धिमान् ने घर से दूर गाँव-नगर के कोने में २-४ मील जाने को भी व्यर्थ बताकर उससे भी बचने के लिए घर में ही किसी कोने में सुन्दर सा मंदिर बनाकर उसमें उसकी स्थापना करके भक्ति-पूजा को वैध बता दिया और घरों में ही मंदिर बनने लगे। घर में पूजा-अर्चना होने लगी, और भी प्रगति हुई। घर के किसी एक कमरे में ही क्यों प्रत्येक सदस्य अपने अपने कमरे में ही भगवान की मूर्ति, चित्र, प्रतिकृतियाँ आदि स्थापित करके बिना कमरे से बाहर निकले वहीं पर ही धार्मिक क्रियाकाण्ड करने शुरु कर दिये।

कुछ विशेष भक्तों ने भगवान की और अपने बीच की दूरी कम करने के लिए ईश्वर के प्रतीक चिन्ह को हाथ में, अंगुली में लगा लिया तो किसी ने गले में धागा डालकर और अधिक निकटता के भाव से वक्ष स्थल पर (छाती पर) टांग लिया। ईश्वर बहुत ही निकट आ गया। फिर भी दूरी रही। शरीर में आत्मा अन्दर थी और ईश्वर बाहर। तब ऋषियों ने वेद मंत्र के आधार पर बताया कि मनुष्यो! उस परमेश्वर को अपने से दूर क्यों मान रहे हो। वह तो अनादि काल से सर्वव्यापक होने से हमारी आत्मा के अन्दर है और उसे कोई भी स्वयं से दूर नहीं कर सकता है।

इस वेद मन्त्र में भक्ति की वास्तविकता बताई गई है कि हे आनन्द के भण्डार सोमेश्वर! आपकी भक्ति आराधना होती तो हृदय में ही है किन्तु मनुष्यों के बनाये ईंट, पत्थर, लकड़ी के मंदिरों में नहीं किन्तु आपके ही बनाये हृदय मंदिर में, जहाँ पर मैं-आत्मा निवास करता हूँ, आपकी आराधना होती है। हे मेरे स्वामी! इस हृदय मंदिर में रहते हुए भी आप तब प्रकट होते हैं, आपकी अनुभूति तब होती है जब हृदय मंदिर आत्मा में अविद्यारूपी अंधकार न हो, झूठ, छल, कपट, स्वार्थ, हिंसा, अहंकार आदि विकारों का मैल न हो।

ज्ञानातिरिक्तवस्तुसदद्विवेचनम्

ले.-श्री पं० शंकरदेव जी आचार्य

ओ३म् ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्

यस्मिन् देवा अधिविश्वे निषेदुः।

यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति

य इत्तद्विदुस्त इमे समासते।।

मन्त्रार्थः-जिस व्यापक अविनाशी सर्वोत्कृष्ट परमेश्वर में सब विद्वान् और पृथिवी सूर्य आदि सब लोक स्थित हैं कि जिसमें सब वेदों का मुख्य तात्पर्य है, उस ब्रह्म को प्राप्त हो सकता है? नहीं, किन्तु जो वेदों को पढ़ के धर्मात्मा योगी होकर उस ब्रह्म को जानते हैं, वे सब परमेश्वर में स्थित हो के मुक्ति रूपी परमानन्द को प्राप्त होते हैं।

'विवेकख्यातिरविप्लबा हानोपायः'-आत्मा पृथक् है मन पृथक् है, इन्द्रियाँ पृथक् हैं, शरीर पृथक् है इत्यादि पदार्थों का साक्षात् ज्ञान और वह भी इतना दृढ़ कि कभी भी मिथ्या ज्ञान से पराभूत न हो अर्थात् मन इन्द्रिय और शरीरादि में कभी भी आत्मबुद्धि न हो, तो ऐसे ज्ञान को विवेकख्याति कहते हैं और वही मुक्ति का साधन है। **'विशेषदर्शिन आत्मभावभावनानिवृत्तिः'**-इस सूत्र की व्याख्या में व्यास जी लिखते हैं कि जैसे वर्षा ऋतु में तृणाङ्कुरों के फूटने से अंकुरों के बीज की सत्ता का अनुमान होता है वैसे ही मोक्षमार्ग की चर्चा सुनने से जिसके रोमहर्ष और अश्रुपात देखे जाते हैं, उस पुरुष में भी विशेष ज्ञान रूप कारण से उत्पन्न होने वाला अपवर्गभागीय कर्म (मोक्षमार्ग की ओर प्रवृत्त कराने वाला कर्म) है, ऐसा अनुमान होता है, उस पुरुष की आत्म-भाव-भावना स्वाभाविकी होती है और अन्य पुरुष अविद्यादि दोषों में फंसे होने के कारण तत्त्व निर्णय करने में रुचि नहीं रखते, किन्तु व्यर्थ दुराग्रह पक्षपातादि में प्रवृत्त होते हैं। आत्मभाव-भावना क्या वस्तु है इसको दिखाते हैं-पहले मैं कौन था और क्यों था? जो यह प्रत्यक्ष दीख रहा है यह क्या है? यह दृश्यमान जगत् क्यों है? आगे हम कौन होंगे और किस प्रकार से होंगे? यह जो आत्मभाव-भावना है सो तत्त्वदर्शी पुरुष की सर्वथा निवृत्त हो जाती है? क्योंकि यह सब अविद्या के कारण मन की विचित्र अवस्थाएँ हैं। किन्तु अविद्या के न रहने पर शुद्ध पुरुष का मन की इन अवस्थाओं से सम्बन्ध छूट जाता है। ऐसे पुरुषों को कि जिनके अविद्यादि क्लेश नष्ट हो चुके हैं, उनको क्षीण क्लेश, कुशल या चरमदेह (अर्थात् जिनका यह अन्तिम शरीर है) कहते हैं।

कणाद ऋषि भी कहते हैं-'धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्म सामान्यविशेषसमवायनां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसम्' पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा (जीवात्मा और परमात्मा) और मन इन इन द्रव्यों का और इनके ही सामान्य और विशेष, जो २४ प्रकार के गुण अर्थात् किस किस द्रव्य में कौन कौन गुण है इत्यादि षट्पदार्थों का, धर्मविशेष के अनुष्ठान से उत्पन्न होने वाला जो तत्त्वज्ञान, उससे ही निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। वेद ने भी यही कहा है।

''तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'-महान् जो पुरुष, अज्ञान से रहित, आदित्यवर्ण अर्थात् ज्ञानस्वरूप, उसको ही जानकर मनुष्य मृत्यु के दुःख से बच सकता है। तात्पर्य यह है कि ब्रह्म से अतिरिक्त अन्य पदार्थ भी हैं किन्तु उनके ज्ञान होने पर भी जब तक ब्रह्म, जो महापुरुष उसका ज्ञान होने तक कभी मनुष्य का जन्म सफल नहीं हो सकता। वेदों में मूल रूप से तीन पदार्थों का अलङ्कार रूपेण वर्णन है। यथा-

द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्योऽभिचाकशीति'।।

अर्थ-(द्वा) ब्रह्म और जीव दोनों (सुपर्णा) चेतनता और पालनादि गुणों से सदृश (सयुजा) व्याप्य व्यापक भाव से संयुक्त (सखायः) परस्पर मित्रता युक्त, सनातन, अनादि हैं और (समानं वृक्षं) वैसा ही अनादि मूल रूप कारण और शाखा रूप कार्य युक्त वृक्ष अर्थात् जो स्थूल होकर प्रलय में छिन्न भिन्न हो जाता है, वह तीसरा अनादि पदार्थ है, इन तीनों के गुणकर्म और स्वभाव भी अनादि हैं। इन जीव और ब्रह्म में से एक जो जीव है वह इस वृक्ष रूप संसार में पाप पुण्य रूप फलों को (स्वाद्वत्ति) अच्छी प्रकार भोगता है और दूसरा परमात्मा कर्मों के फलों को (अनश्नन्) न भोगता हुआ चारों ओर अर्थात् भीतर बाहर सर्वत्र प्रकाशमान हो रहा है, जीव से ईश्वर और ईश्वर से जीव और दोनों से प्रकृति भिन्न स्वरूप तीनों अनादि हैं। ऐसा वेद में स्पष्ट कहा है। और **'इयं विसृष्टिर्यत आबभूव'**-यह सृष्टि जिसमें द्युलोक, अन्तरिक्ष लोक और पृथिवी लोक हैं, इन तीन प्रकार में अनन्त लोक का वर्णन है, जैसे पृथिवी में बड़े बड़े पर्वत समुद्र नदी वृक्ष वनस्पति आदि औषधियों, अनेक प्रकार के ग्राम्य, आरण्य, मनुष्य, पशु, पक्षी, कृमि, कीट आदि अनेकों प्रकार के अवान्तर भेदों का वर्णन वेदों में विद्यमान है।

'सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्'-और जिसको वेद इन शब्दों में कहता है कि **'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यद्धात्'** अर्थात् परमात्मा ने जीवों के कर्मानुसार जिस जिसके जैसे जैसे कर्म थे वैसे वैसे ही सर्वज्ञता से कर्त्तव्य पदार्थों को रचा। जब वेद इस सृष्टि के लिये इन शब्दों में कथन करता है तो फिर नवीन वेदान्ती लोग प्रत्यक्ष दृश्यमान जगत् का अपलाप करते हैं अर्थात् स्वप्न के पदार्थों की तरह जगत् भी असत्-अविद्यमान है, कहते हैं। शङ्कराचार्य वेदान्त २।१।४ सूत्र के भाष्य में लिखते हैं कि-

'ब्रह्मास्य जगतो निमित्तकारणं प्रकृतिश्च'-ब्रह्म इस जगत् का निमित्त और उपादान कारण है फिर दूसरे स्थान पर कहा कि यह ब्रह्म का रूप भेद अविद्या कल्पित है। ऐसा स्वीकार करने से अविद्या कल्पित रूपभेद से सावयव ब्रह्म नहीं हो जाता है। पारमार्थिक रूप से सर्वव्यवहार से अतीत विकारादि रहित ही विद्यमान है। मिथ्या ज्ञान से किया हुआ (वे० २।१।२२) जीव का संसारी होना, ब्रह्म का सृष्टिकर्त्ता होना, इस सारे भेद व्यवहार के सम्यक् ज्ञान से बाधित होने से, अभाव होने से किस से सृष्टि, किससे दुःखादि करने आदि का दोष आता है? अविद्या से सामने उपस्थापित नाम और रूप से किया हुआ कार्य और कारण संघात जो उपाधि अविवेक से की हुई भ्रान्ति है। जिसमें दुःखादि है वह संसार यथार्थ में नहीं है, ऐसा हम बहुत बार कह चुके हैं। अविद्यात्मक जो उपाधि उससे परिच्छिन्न जो जीव उसकी अपेक्षा से ही ईश्वर का ईश्वरत्व और सर्वज्ञत्व सर्वशक्तिमत्त्व है, यथार्थ में विद्या के द्वारा हटा दी गई है सर्व उपाधि जिसमें, ऐसे आत्मस्वरूप में ईशितृत्त्व ईशितव्यत्व सर्वज्ञत्वादि संगत नहीं होते'।

इसी प्रकार बौद्धों का भी एक भेद है जिसके मत में कार्य कारण रूप सभी पदार्थ असत्, चित्तमात्र कल्पित, स्वप्न के पदार्थों के तुल्य हैं। बाह्य वस्तुओं की प्रतीति मात्र की सत्ता है यथार्थ में न कार्य है, न कुछ कारण। जैसा कि इन वचनों द्वारा प्रकट करते हैं-

'न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।

न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता।।

यथा रथादयः स्वप्ने भान्त्येव नैव सन्ति वै।

तथा जाग्रदवस्थायां भूतानि च न सन्ति वै।।

न प्रलय है न उत्पत्ति, न कोई बन्धन में है, और न कोई मोक्ष का साधन करने वाला है और न कोई मुक्ति चाहने वाला है और न कोई मुक्त हुआ। जैसे स्वप्न में रथादि प्रतीत ही होते हैं, किन्तु होते नहीं, वैसे ही जाग्रद् अवस्था में भूतादि कुछ भी नहीं हैं। इसी पूर्व पक्ष को योग भाष्य में व्यास जो इन शब्दों में लिखते हैं-

'नास्त्यर्थो विज्ञानवि-

(शेष पृष्ठ 7 पर)

सम्पादकीय

क्या ऐसे हो पाएगा नशामुक्त राष्ट्र

आज समाज में नशे के फैलने से युवा वर्ग इसमें बुरी तरह फंस चुका है। नशे की दल-दल में फंसकर युवा शक्ति अपने भविष्य को तो बर्बाद कर रही है। इसके साथ अपने माता-पिता का भविष्य भी अंधकारमय बना रही है। जिस युवा शक्ति को राष्ट्र के भविष्य निर्माण में अपना योगदान देना चाहिए था वही युवा वर्ग आज लक्ष्य से हीन होकर अपने भविष्य से खिलवाड़ कर रहे हैं। नशे की चपेट में आकर हमारा देश निराशा के गर्त में डूबता जा रहा है। आज के स्वार्थी नेता अपने स्वार्थ के लिए युवा शक्ति का दोहन करके उन्हें नशे की दलदल में धकेल देते हैं। नशे के विरूद्ध लड़ने के लिए आज बहुत बड़े आन्दोलन की आवश्यकता है। इसके लिए युवा शक्ति को जगाना होगा और सतर्क भी करना होगा। उन्हें उनके कर्त्तव्य का बोध कराना होगा। नशे को जड़ से खत्म करने के लिए हमें सरकार से भी सहयोग लेना चाहिए। जो पार्टी नशा उन्मूलन में सहायता देगी उसी को हम अपना जन समर्थन दें ताकि राष्ट्र के भविष्य को बचाया जा सके। आज का युवा वर्ग आने वाले राष्ट्र का भविष्य है। अगर हम इस युवा पीढ़ी को चरित्रवान बना दें और नशे से मुक्त कर दें तो राष्ट्र का भविष्य अपने आप संवर सकता है।

पर क्या सचमुच आज के राजनैतिक दलों की इच्छा शक्ति सही मायने में नशा मुक्त समाज के निर्माण के लिए वचनवद्ध है? ऐसा कहीं भी दिखाई नहीं देता है। इनके ताजा ताजा दो उदारहण तो हमारे सामने है। एक तो दिल्ली सरकार द्वारा नई शराब नीति बनाना जिसके कारण उनके नेता आज तक जेल में है। बात यहाँ घोटाले की नहीं है बात तो है उनके द्वारा बनाई गई नीति की जो एक के साथ एक मुफ्त की उन्होंने बनाई थी। यह नशा बढ़ाने की नीति थी न कि नशा मुक्त समाज बनाने की। दूसरा उदाहरण उत्तराखण्ड की सरकार द्वारा भांग की खेती को मंजूरी देना है और उसी क्रम में हिमाचल सरकार के मंत्रियों के साथ विधायकों का उत्तराखण्ड जाकर निरीक्षण करना व भांग की खेती हिमाचल में भी वैध करवाने की सिफारिश करना। इससे यह सिद्ध होता है कि सरकारें अपने राजस्व को बढ़ाने के लिए किसी भी स्तर पर गिर सकती है। उन्हें इस बात की चिन्ता नहीं है कि हमारे द्वारा पारित नियमों से कितना नुक्सान समाज व कितना युवा नशे की दल-दल में गिर कर काल के कराल मुख में गिरता जाएगा। जीवन में कई अवसर आते हैं जब हमारे सामने निर्णय लेना कठिन हो जाता है। अनिश्चय की स्थिति में मनुष्य की समझ में कुछ नहीं आता। मनुष्य सोचता है, विचारता है, सभी प्रकार की युक्तियों का सहारा लेता है और तब अन्तर्द्वन्द के पश्चात किसी एक निर्णय पर पहुंचता है। यह निर्णय हमारी इच्छा शक्ति करती है। युद्ध के लिए तैयार अर्जुन के सामने एक समय ऐसा ही संकट उत्पन्न हुआ था। उसके सम्मुख प्रश्न था कि वह धर्म युद्ध करके अपने आत्मीय जनों की हत्या करे या आत्मीयता के मोह में पड़कर अपने कर्त्तव्य से विमुख हो जाए। सोचा समझा, योगेश्वर श्री कृष्ण के उपदेश को सुना और अन्त में निश्चय किया कि मैं युद्ध में भाग लेकर अपने क्षत्रिय धर्म का पालन करूंगा। अच्छे चरित्र के निर्माण के लिए इच्छा शक्ति का होना अति आवश्यक है। जो व्यक्ति दृढ़ निश्चय नहीं कर पाता, जो अपने किसी कार्य को तन्मयता के साथ नहीं करता, उसका व्यक्तित्व प्रभावहीन होता है तथा चरित्र दुर्बल होता है। दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा मनुष्य अपने जीवन में परिवर्तन ला सकता है। जिस व्यक्ति को नशे का सेवन करने या किसी प्रकार के दुर्व्यसन की आदत पड़ गई हैं, ऐसे मनुष्य भी दृढ़ इच्छा शक्ति के द्वारा इस आदत से छुटकारा पा सकते हैं।

राष्ट्र का निर्माण नवयुवकों की भीड़ से नहीं हुआ करता है। राष्ट्र के निर्माण के लिए ऐसे लोगों की जरूरत पड़ती है जिनके जीवन में यौवन शक्ति का प्रवाह हो परन्तु साथ ही विवेक की मशाल भी जलती रहे। यदि जीवन में विवेक की मशाल नहीं जलती है तो तरूणाई राष्ट्र के लिए संकट बनकर खड़ी हो जाती है। इस यौवन के वरदान के प्रसंग में उपन्यास सम्राट प्रेमचन्द का यह वचन सदा प्रेरणा देता रहेगा। जवानी जोश है, बल है, साहस है, दया है, आत्मविश्वास है, गौरव है वह सब कुछ हैं जो जीवन को पवित्र, उज्जवल और पवित्र बना देता है। आज राष्ट्र का गौरव बढ़े, इसके लिए हमें युवकों को चरित्रवान बनाना होगा। आज राष्ट्र के अन्दर जिस प्रकार युवा पीढ़ी नशे की दलदल में धंस रही है, वह सबके लिए चिन्ता का विषय है। पंजाब तो नशे के कारण बहुत बदनाम हो रहा है। इस नशे के कारण पंजाब का भविष्य बर्बाद हो रहा है। युवा पीढ़ी जिसके ऊपर राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है अगर वही युवा पीढ़ी नशे की दलदल में धंस जाए तो उस राष्ट्र की क्या दशा होगी, उसका अनुमान आप स्वयं लगा सकते हैं। आज के युवा वर्ग को कैसे नशे से मुक्त किया जाए? इस पर सबको विचार करना है। क्या सरकार द्वारा खोले गए नशा मुक्ति केन्द्रों से नशा छूट जाएगा? क्या बलपूर्वक युवकों से नशा छुड़ाया जा सकता है? इन सभी विषयों पर विचार विमर्श करने की आज नितान्त आवश्यकता है। आज की युवा पीढ़ी के लिए हमें ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिए जिससे उन्हें राष्ट्र के प्रति, परिवार के प्रति अपने भविष्य के प्रति और अपने माता-पिता के प्रति जागरूक किया जा सके। नशा मुक्ति केन्द्रों के द्वारा तब तक युवा पीढ़ी को नशे से मुक्त नहीं किया जा सकता जब तक उनके अन्दर स्वयं छोड़ने की भावना उत्पन्न न हो। राजनीतिक पार्टियां नशे जैसे गम्भीर मुद्दे पर चिन्तन करने के बजाय राजनीति करने लगती है और एक दूसरे के ऊपर दोषारोपण लगाती हैं। इस गम्भीर मुद्दे पर राजनीति करने के बजाय सभी राजनीतिक पार्टियां एकजुट होकर कोई समाधान निकाले तो अवश्य युवा वर्ग में सुधार हो सकता है। इस गम्भीर मुद्दे पर व्यक्तिगत स्वार्थ को त्यागकर राष्ट्रहित को सामने रखना चाहिए। नशा जैसी गम्भीर समस्या पर सारा समाज, सभी राजनीतिक दल, समाजसेवी संस्थाएं एकजुट होकर कार्य करें तो इस समस्या से छुटकारा मिल सकता है। नशा नाश का दूसरा नाम है। नशे में व्यक्ति की सोचने विचारने की शक्ति बिल्कुल नष्ट हो जाती है। उसे नैतिक, अनैतिक में कोई भेद नजर नहीं आता। नशे में वह कोई भी कुकृत्य करने से घबराता नहीं है। मानवता का नाश करने वाले इस नशे को जड़ से खत्म करने के लिए सभी को एकजुट होना होगा। अगर प्रत्येक व्यक्ति अपना, अपने परिवार का सुधार कर लें तो राष्ट्र का अपने आप सुधार हो जाएगा। आज की युवा पीढ़ी के भटकने का कारण यही है कि उन्हें अच्छे संस्कार नहीं मिल रहे हैं। घर में, स्कूलों में, कॉलेजों में जहां पर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है, उसके नव जीवन का निर्माण होता है वहां पर उन्हें उस प्रकार की शिक्षा नहीं मिल पा रही है जिससे वे चरित्रवान् बन सकें। नशा व्यक्ति की विवेकशीलता को खत्म कर देता है। विवेक के समाप्त होने पर मनुष्य और पशु में कोई फर्क नहीं रह जाता है।

आज राष्ट्र का गौरव बढ़े, इसके लिए हमें युवकों को नशामुक्त और चरित्रवान बनाना होगा। युवकों के चरित्र को गौरवमय बनाने के लिए उनके चरित्र में भारतीय संस्कृति का दिव्य प्रकाश होना चाहिए। आज प्रत्येक राजनैतिक दल नवयुवकों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए हर प्रकार के हथकण्ड़े अपनाते हैं और आज का युवा मानस दिशा भ्रमित होकर उनके इशारों पर बन्दर की तरह नाच रहा है। राजनैतिक दल तो केवल अपने स्वार्थ सिद्ध करने के लिए युवकों का उपयोग करता है। इस प्रकार की राजनीति के हाथ में युवकों का भविष्य अन्धकारमय बनता जा रहा है। आज इन दिग् भ्रमित युवकों को दिशा निर्देशन की जरूरत है। इस दिशा निर्देशन के पीछे राष्ट्र भक्ति, विवेकशीलता, अपनी संस्कृति के प्रति गौरव की भावना का उद्देश्य निहित होना चाहिए। तब तक नशा मुक्ति केन्द्रों से नशे को समाप्त नहीं किया जा सकता जब तक उनके अन्दर विवेक की, राष्ट्रभक्ति की भावना स्वयं पैदा न हो। इसलिए राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक का कर्त्तव्य है कि इस गम्भीर समस्या पर विचार करके इस का समाधान अवश्य निकालें ताकि राष्ट्र के भविष्य को बर्बाद होने से बचाया जा सके और युवा वर्ग की ऊर्जा को सकारात्मक कार्यों में लगाया जा सके। तभी देश भी उन्नति करेगा और समाज भी उन्नति करेगा।

प्रेम कुमार
संपादक एवं सभा महामन्त्री

यज्ञ रुप प्रभु हमारे

ले.-नरेन्द्र आहूजा

'यज्ञ' का बहुत व्यापक अर्थ है। परमपिता परमेश्वर को 'यज्ञरूप' भी कहा गया है क्योंकि ईश्वर का प्रत्येक कार्य सृष्टि का निर्माण, पालन, संहार तथा प्रत्येक जीव के कर्मानुसार न्याय देना सभी नि:स्वार्थ भाव से हैं इसलिए क्योंकि ईश्वर के कार्यों में उनका स्वयँ का कोई लाभ स्वार्थ नहीं है अपितु परमपिता परमेश्वर के सभी कार्य स्पष्ट अथवा परोक्ष रूप से जीवों के उपकार के लिए ही हैं और परोपकार की दृष्टि से किया गया प्रत्येक कार्य 'यज्ञ' की श्रेणी में आता है। परमपिता परमेश्वर ने सृष्टि का निर्माण जीवों के उपयोग उपभोग के लिए ही तो किया है। सृष्टि के निर्माण के उपरांत उसकी पालना करने का कार्य यज्ञ की श्रेणी में ही आता है। नवनिर्माण से पूर्व अपरिहार्य रूप से पुराने को हटाने का कार्य अर्थात् सृष्टि का संहार परोपकार का कार्य होने के कारण तथा पुन: निर्माण के कारण किए जाने के कारण यज्ञ की श्रेणी में है। ईश्वर द्वारा उनकी बनाई सृष्टि में जीव को सही मार्ग पर चलाने की प्रेरणा देना भी यज्ञ की श्रेणी में आता है। परमपिता परमेश्वर न्यायकारी सर्वशक्तिमान सर्वव्यापी प्रभु द्वारा प्रत्येक जीव के प्रत्येक कार्य का दृष्टा रूप में हिसाब रखते हुए अपनी न्याय व्यवस्था के अधीन न्याय स्वरूप जीव की नियति के रूप में दंड अथवा पुरस्कार देना भी जीवों को कुमार्ग पर चलने से रोकने तथा सुमार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करने के कारण 'यज्ञ' की श्रेणी में ही आता है। जीव जब सुपथ पर चलते हुए ईश्वरीय अनुकम्पा से अच्छा प्रारब्ध पाता है तो निश्चित रूप से सुपथ पर चलते रहने की सद्प्रेरणा उसके मन मस्तिष्क में जागृत होती है। इसी प्रकार अनाचार करने वाले जीव को जब ईश्वरीय न्याय व्यवस्था में दंड मिलता है तो वह कुमार्ग छोड़ने की प्रेरणा पाता है।

कई बार हम किसी दुराचारी व्यक्ति को भौतिक धन संपदा से युक्त मौज मस्ती करते देखते हैं तो हमारा मन चंचल स्वभाव के कारण विचलित हो जाता है और ईश्वरीय न्याय व्यवस्था से विश्वास उठने लगता है। हमें लगता है कि सीधे सच्चे धार्मिक वृति के लोग कष्ट उठा रहे हैं और कुमार्ग पर चलने वाले दुराचारी मौज कर रहे हैं परंतु यह अनुभूति हमें हमारी अल्पज्ञता के कारण होती है हमें उन धार्मिक या दुराचारी व्यक्तियों के पूर्व का वृत्तांत का ज्ञात नहीं है इसलिए कष्ट अथवा सुख की प्राप्ति के विषय में हम अपने अल्पज्ञान के कारण कोई टिप्पणी नहीं कर सकते। हम अल्पज्ञानी हैं हमारी दृष्टि सीमित है ईश्वरीय न्याय व्यवस्था पर संशय करना हमारी भूल है।

ईश्वर के सभी कार्य सृष्टि का निर्माण, पालन, संहार तथा न्याय सभी प्राणि मात्र व जीवों के कल्याण के लिए नि:स्वार्थ भाव से किए जाने वाले कार्य हैं इसीलिए यज्ञीय कार्यों की श्रेणी में आते हैं। ईश्वर को दयालु भी कहा गया है और ईश्वर को यज्ञरूप भी इसी कारण से माना व जाना जाता है यज्ञरूप ईश्वर से प्रेरणा पाकर यज्ञ करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। तैत्तिरीय ब्राह्मण का वचन 'यज्ञो वै भुवनस्य नाभि:' (तैत्तिरीय ब्राह्मण 6/4/5) यज्ञ ही संसार का केन्द्र आधार है। परमपिता परमेश्वर के यज्ञरूप होने एवं समस्त ईश्वरीय कार्य यज्ञीय होने की पुष्टि करता है। यदि सभी स्वार्थी हो जायें तथा केवल अपने बारे में ही सोचने लगें तो यह संसार चल ही नहीं सकता। यज्ञीय कार्यों की श्रेणी में आने वाले ईश्वरीय कार्यों से प्रेरणा पाकर जब मनुष्य प्राणी मात्र के उद्धार की बात सोचता हुआ परोपकार के कार्य करता है तभी यह संसार चलता है अर्थात् यज्ञीय कार्य वा यज्ञ ही संसार का केन्द्र वा आधार है। इसीलिए देव दयानन्द ने संसार के उपकार को आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य बताया और कहा कि हमें अपनी उन्नति से संतुष्ट नहीं रहना चाहिए अपितु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

मनुष्य परमपिता परमेश्वर की सर्वोत्तम कृति है क्योंकि अन्य सभी योनियाँ केवल भोग योनि हैं जिसमें जीव अपने पूर्व जन्मों के कर्मों के फल को नियति स्वरूप भोगता है परन्तु मनुष्य योनि में मनुष्य मननशील विचारवान होता हुआ स्वतंत्र कर्ता के रूप में सभी से स्वआत्मवत यथायोग्य व्यवहार करता हुआ परोपकार के कार्य करता है तभी मनुष्य कहलाता है। यदि मनुष्य अपने जीवन में मानव बन कर यज्ञीय कार्य नहीं करता तो वह मनुष्य के रूप में भी पशुओं की भाँति भार बन कर धरती पर विचरण करता है।

अब प्रश्न उठता है कि मनुष्य के लिए यज्ञीय कार्य क्या है तथा यज्ञ की व्यापक परिभाषा क्या है? देव दयानन्द ने यज्ञ की बहुत व्यापक परिभाषा आर्योद्देश्य रत्नमाला में दी है **''जो अग्निहोत्र से ले के अश्वमेध पर्यन्त, वा जो शिल्प व्यवहार और जो पदार्थ विज्ञान है, जो कि जगत के उपकार के लिए किया जाता है उसको यज्ञ कहते हैं।''** दरअसल महर्षि दयानन्द ने जिन शब्दों का प्रयोग अनेक बार अपने ग्रंथों में किया है तथा जिनका आर्य लोक व्यवहार में बार-बार उपयोग होता है उन ईश्वर से नमस्ते पर्यन्त सौ शब्दों की यौगिक परिभाषा देव दयानन्द ने इस उद्देश्य से कर दी थी ताकि कालान्तर में कोई अन्य इनके अपनी सुविधानुसार रूढ़ि अर्थों का प्रयोग कर प्रकरणों के अर्थों का अनर्थ ना कर डालें। परन्तु लोक प्रचलित सामान्य रूढ़ि अर्थ यौगिक अर्थों का स्थान ले लेते हैं या फिर लोग अपनी सुविधानुसार इन रूढ़ि अर्थों का प्रयोग करने लगते हैं। उदाहरण के तौर पर 'जलज' शब्द का यौगिक अर्थ 'जल में उत्पन्न होने वाला' परन्तु रूढ़ि अर्थ में जलज शब्द का प्रयोग 'कमल' के लिए किया जाने लगा है। इस रूढ़ि अर्थ के निरन्तर प्रयोग या प्रचलन से हम लोग यौगिक अर्थों को भूलने लगे हैं। ठीक इसी प्रकार आजकल 'यज्ञ' का रूढ़ि अर्थ लोकव्यवहार के कारण या फिर आर्यजनों ने अपनी सुविधानुसार केवल अग्निहोत्र या हवन तक सीमित कर दिया है।

देव दयानन्द द्वारा दी गई यज्ञ की परिभाषा में **'अग्निहोत्र'** यज्ञीय कार्यों का प्रारम्भ है हम यदि प्रारम्भ को ही अंत मान लें, सफर की शुरुआत को ही मंजिल मान लें तो शायद कभी भी किसी भी कीमत पर जीवन यात्रा की मंजिल तक नहीं पहुंच सकते। इसके दो कारण हैं पहला शायद हम सुविधा प्रारम्भ को ही अंत मानने में समझते हैं। इससे मनुष्य अपनी जीवन यात्रा में यज्ञीय अर्थात् नि:स्वार्थ भाव से परोपकार के कार्य करने में होने वाले कष्टों से बचना चाहते हैं।

दूसरा मनुष्य को मानव जीवन के उद्देश्य तथा मंजिल का ज्ञान नहीं है। कर्म एवं भोग योनि होने के कारण केवल मात्र मानव जन्म ही ऐसा अनमोल है जिसे पाकर मनुष्य परोपकार सद्कर्म अर्थात् यज्ञीय कार्य करता हुए ही ईश्वरीय न्याय व्यवस्था के आधीन जन्म मरण के बंधन से छूट सकता है। मतलब मानव जीवन का उद्देश्य मोक्ष की प्राप्ति और इस उद्देश्य प्राप्ति का एकमात्र साधन परोपकार के यज्ञीय कार्य करना ही है।

किसी भी मंजिल पर पहुंचने के लिए साधन एवं रास्ते का पूरा ज्ञान आवश्यक है। मनुष्य जीवन के समस्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए यज्ञ साधन है। परन्तु इसके लिए **'यज्ञ'** के व्यापक अर्थ को समझ कर जीवन में आत्मसात करने की आवश्यकता है।

यजुर्वेद में **''यज्ञो वै भग:''** (यजुर्वेद 11/16) यज्ञ ही ऐश्वर्य है तथा **''यज्ञो वै स्व:''** (यजुर्वेद 01/4) यज्ञ ही सुखस्वरूप अर्थात् सब सुखों का प्रदाता है। परोपकार वा प्राणी मात्र का उद्धार करने वाले जीव को परमपिता परमेश्वर अपनी न्याय व्यवस्था के आधीन पुरस्कार स्वरूप अच्छी नियति ऐश्वर्य वा सुख प्रदान करते हैं। इससे स्पष्ट है कि परोपकार के सभी कार्य यज्ञ की श्रेणी में आते हैं। सभी ईश्वरीय कार्य यज्ञीय परोपकार के कार्य होने के कारण ईश्वर को यज्ञरूप भी कहते हैं।

कर्म का सिद्धान्त

ले.-श्री पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय

(गतांक से आगे)

प्रश्न ९१ कुछ लोग आयु की इयत्ता वर्षों पर और कुछ श्वासों पर मानते हैं। इसका क्या अर्थ है?

उत्तर यह दोनों बातें हमको काल्पनिक प्रतीत होती हैं। न तो योग दर्शन में ही सूत्रकार ने इसको स्पष्ट किया है। न अन्य शास्त्रों में इसका कोई उल्लेख है। यह प्रतिपत्ति कहाँ से प्रारम्भ हुई यह कहना कठिन है। संभव है अकाल मृत्यु और निश्चित काल मृत्यु का प्रश्न उठने पर भिन्न भिन्न मत वालों ने ऐसी कल्पना की हो। जिसको वर्षों की इयत्ता कहते हैं वह तो सर्वथा बाह्य वस्तु है। वर्षों की माप सूर्य, पृथिवी, चन्द्र आदि के भ्रमण पर आश्रित है। आप जिस को वर्ष कहते हैं, वह किसी अर्थ में केवल एक दिन ही कहा जा सकता है। यदि अपने जीवन को एक इकाई माना जावे तो कीट-पतंगों का समस्त जीवन हमारे एक दिन के बराबर होगा और यदि उनके जीवन के माप के लिये कोई और माप-दण्ड रखा जाए तो उन के जीवन भी वर्षों और युगों में विभक्त हो सकेंगे।

श्वासों पर (यदि श्वास से अर्थ प्राण और अपान मात्र की क्रिया का है) जीवन की माप का आश्रय तो और भी अर्थ-शून्य प्रतीत होता है। श्वास जीवन की एक क्रिया-मात्र है और वह भी एक क्रिया। यह क्रिया भी केवल भौतिक क्रिया। जैसे सायकिल के पहिये की हवा। यह ठीक है कि सायकिल के पहियों में जब तक हवा है तभी तक सायकिल चलेगी। परन्तु हवा सायकिल के जीवन का न उद्देश्य है न मापदण्ड। कहीं कहीं कहा गया है कि प्राण ही जीवन है। यह उसी प्रकार का कथन है जैसे कोई कहे कि हवा ही सायकिल है। यह उपचार की भाषा है। कुछ लोग समझते हैं कि यदि हम श्वास रोक लें तो जीवन बढ़ा लेंगे। यदि ऐसा ही तात्पर्य होता तो जाति और आयु के साथ 'भोग' क्यों लगाते? वहाँ तो कहा है कि कर्म का विपाक तीनों चीज़ों से संमिश्रित है- जाति, आयु और भोग। यदि कोई कहे कि श्वास को रोक कर हम मृत्यु को भगा देंगे जैसे यदि आप सायकिल को पकड़ कर खड़े हो जाँय तो हवा न निकलेगी तो इससे उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ। यदि सायकिल के रोकने से पहिये की हवा सुरक्षित भी रही तो इससे क्या होता है। दूसरे यह भी प्रश्न है कि श्वास को रोक कर हम आयु को बढ़ा भी सकते हैं या नहीं। यह एक अंश में ठीक हो सकता है सर्वांश में नहीं। श्वास-प्रश्वास की स्वस्थता तो एक चीज़ है और रोक कर खड़ा हो जाना दूसरी चीज़। श्वास अधिक चले वह भी रोग है। श्वास रुके वह भी रोग। इसलिये श्वास के नियंत्रण (नियमित करने) से स्वास्थ्य अवश्य अच्छा होगा परन्तु जीवन की इयत्ता की निश्चित केवल स्वास्थ्य से ही न होगी। और भी इसके निर्धारण के कारण हो सकते हैं। यदि जीवन पिछले जन्म के कर्मों का भोग मात्र ही हो, तो कहना चाहिये कि जाति, आयु और भोग को सर्वथा निश्चित रूप से पा कर हम ने अपने पके हुए कर्मों का फल प्राप्त कर लिया और हम इन तीनों बातों से जकड़ गये। फिर कर्म के स्वातंत्र्य का तो अवसर चला गया। और कर्म-स्वातंत्र्य का बाँध पिछले कर्मों की फल-प्राप्ति का उचित साधन नहीं कहा जा सकता। समस्त कर्म-फल-बाद का सिद्धांत अन्ततोगत्वा हमारी मोक्ष-प्राप्ति को प्रभावित करने के लिये हैं। कर्मों का फल बदला लेने या किसी कल्पित कानून की सन्तुष्टि के लिये नहीं है। हम ऊपर कह चुके हैं कि दुःख दवा है और सुख गिज़ा (भोजन) है। दवा और गिज़ा दोनों का एक अन्तिम ध्येय है, वह है स्वास्थ्य। भोजन सीधा स्वास्थ्यकर है और औषधि रोग दूर कर के स्वास्थ्य देती है। परन्तु अन्तिम उद्देश्य है दोनों का स्वास्थ्य। इसी प्रकार पिछले कर्मों के विपाकस्वरूप जो हमको जाति आयु और भोग प्राप्त होते हैं और यह तीनों ह्लाद (सुख) और ताप (दुख) से ओत प्रोत होते हैं तो इस सुख और दुःख के अतिरिक्त इस जीवन का एक और उद्देश्य भी होना चाहिये वह है कर्त्तव्य-पालन और सम्यक्-ज्ञान-उपलब्धि का स्वतंत्रता पूर्ण अवसर। जिस जीवन में यह चौथी बात नहीं उसको कर्मों का फल कहना ठीक न होगा। सांख्य ने कहा कि "अथ त्रिविधदुःखात्यन्त-निवृत्तिरत्यन्त-पुरुषार्थः" अर्थात् तीनों प्रकार के दुःखों की निवृत्ति ही पुरुष के जीवन का वास्तविक अर्थ (पुरुषार्थ) है और योग ने इन सुख आदि को भी योगी की दृष्टि में दुःख ही बताया। यह भी यही प्रकट करता है कि योगी को इस जन्म में न केवल सुख और दुःख ही भोगना है अपितु इनके स्वरूप को समझ कर अनागत दुःख (इस क्षण के पश्चात् आने वाले दुखों) की निवृत्ति का प्रयास भी करना है। यह प्रयास उसी समय ही हो सकेगा, जब हम पिछले कर्म से सर्वथा जकड़े न हों और हमको उनके घटाने बढ़ाने का भी अवसर हो।

प्रश्न ९२ यदि ऐसा है तो फल की निश्चितता में बाधा पड़ेगी। इससे ईश्वर का नियम टूटेगा। हम बबूल का बीज बोकर भी आम ले सकेंगे। यह तो कर्म के सिद्धान्त का पोषण नहीं अपितु उपहास हुआ?

उत्तर फल की इयत्ता और फल का स्वरूप न समझने के कारण ऐसी आपत्ति उठाई जाती है। बबूल का बीज बोकर आम तो प्राप्त नहीं किये जा सकते परन्तु बबूल के वृक्ष के संरक्षण और पालन पोषण में भिन्नता लाने से बबूल के काँटों से होने वाले हानि लाभ में तारतम्य लाया जा सकता है। यह ईश्वर के नियमों का उल्लङ्घन नहीं, अपितु उन्हीं के अनुकूल चलने का परिणाम-मात्र होगा। जो समझते हैं कि हम सर्वथा परतंत्र है, वह भी भूलते हैं। हमारे जीवन की तीन चीजें हैं: प्रवृत्ति, संगति और प्रयति।

प्रवृत्तिः संगतिश्चैव तृतीया प्रयतिस्तथा।

आद्ये द्वे तु पराधीने ह्यन्त्या स्वातंत्र्यमीहते।।

प्रवृत्ति (Tendency) एक प्रकार का स्वभाव है, जो पिछले कर्मों के अनुसार हमको मिलता है, भिन्न भिन्न योनियों में जन्म लेने वाले जीवों की भिन्न भिन्न प्रवृत्तियां होती हैं जो उनके पिछले जन्म जन्मान्तरों के कर्मों से बनी होती हैं। दूसरी चीज है संगति (Society), जब हम इस संसार में जन्म लेते हैं तो एक विशेष प्रकार के वातावरण (Environment) में अपने को पाते है, यह वातावरण भी आवरण है, हम इसके लिये पराधीन हैं। जो कर्म हम कर चुके उसके ही अनुसार हमको यह संगति मिली। चोरी करने से जब चोर जेल में आता है तो यह दोनों चीजें साथ लाता है, चोरी की प्रवृत्ति-नम्बर एक। जेल की संगति-नम्बर दो। चोर को स्वतंत्र घूमने के लिये सड़क पर छोड़ा नहीं जा सकता और न उसकी प्रवृत्ति बदली जा सकती है। यह ठीक है कि इस विशेष संगति का उद्देश्य तो प्रवृत्ति परिवर्तन ही है। परन्तु यह चोर के अधिकार में नहीं कि संगति को बदल दे। अब तीसरी रही प्रयति (Will) इसमें चोर भी सर्वथा स्वतंत्र है। उसको कर्तु (करने) अकर्तु (न करने) और अन्यथाकर्तु (उल्टा करने) की पूरी स्वतंत्रता है। वह जेल में रहकर उसके वातावरण का अपने ऊपर प्रभाव कम कर सकता है। उसी जेल में कड़े से कड़े नियमों का सत्यता से पालन करते हुये लोग अपने अपराधों का प्रायश्चित्त कर साधु बन सकते हैं और उसी जेल के उसी वातावरण में खोटी प्रवृत्ति के लोग बिना संकोच गहरे से गहरे पाप करने की प्रवृत्ति को बढ़ा सकते हैं। इस पर प्रयति को प्रवृत्ति और संगति दोनों से घोर युद्ध करना पड़ता है। और प्रवृत्ति और संगति दोनों में परिवर्तन होना कठिन हो परन्तु असम्भव नहीं है, और जब हम प्रवृत्ति और संगति को किसी अंश में भी अपने वश में कर सकते हैं तो मानों हमने अपने भोगों पर भी कुछ न कुछ आधिपत्य पा लिया। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारी ज्ञानपूर्वक प्रयति हमारे इस जन्म में होने वाले दुःख और सुख में भी परिवर्तन कर सकती है। यद्यपि कठिनता के साथ। इससे ईश्वर के कर्मफल के सिद्धान्त के अटल होने का खण्डन नहीं होता। क्योंकि कर्मों का फल अगले कर्मों के स्वातंत्र्य को नहीं छीनता; अपितु आगे के

(शेष पृष्ठ 6 पर)

पृष्ठ 5 का शेष-कर्म का सिद्धान्त

शुभ कर्म पिछले अनिष्ट भोग के काठिन्य को कोमल बना देते हैं। यह परिवर्तन थोड़ा नहीं है। जिस चोर के हाथ में हथकड़ी पड़ी हुई है उसको यदि ज्ञान हो जाए और वह यह समझने लगे कि मेरे पापों का प्रायश्चित्त हो रहा है तो वह चाहे अपनी हथकड़ियों को तोड़ न सके फिर भी वे हथकड़ियां आन्तरिक दु:ख को घटा देती हैं और उसके विपरीत मनोवृत्ति वाला कैदी जेलर से लड़कर अपने क्लेश को बढ़ा लेता है। यह दूसरी बात है कि दण्ड की अवधि कम या अधिक न हो सके।

प्रश्न ९३ मैं एक सीधा प्रश्न करना चाहता हूँ। मुझे जाति, आयु और भोग पिछले कर्मों के फल स्वरूप तदनुसार ही मिले हैं। क्या मैं इस जन्म में कोई ऐसा कार्य कर सकता हूँ, जिससे इन तीनों में परिवर्तन हो सके?

उत्तर-प्रश्न इतना सीधा तो नहीं है। न उत्तर ही इतना सुबोद्धव्य है। फिर भी सोचना चाहिये। पहली बात लीजिये। कर्मों के तीन भाग किये जाते हैं-सञ्चित, क्रियमाण और प्रारब्ध। वह कर्म जो अभी फल नहीं दे रहे हैं। कालान्तर में फल देने के लिये सुरक्षित रखे हुये हैं। दूसरे वह कर्म जो किये जा रहे हैं। तीसरे वह कर्म जो फल देने के लिये पक गये हैं और उनका फल मिलना आरम्भ हो गया है। इस जन्म में हम उन कर्मों का फल पा रहे हैं जो प्रारब्ध हैं अर्थात् पक कर तैयार हैं। कुछ ऐसे भी पिछले एक जन्म या कई जन्मों में किये हुए कर्म होंगे जो अभी पके नहीं और जिनका फल आजकल हमको नहीं मिल रहा। कचहरियों के अभियोग (मुकद्दमों) का दृष्टान्त ले लें तो यह कह सकते हैं कि अदालत में अभी बहुत से ऐसे मुकद्दमें हैं जो भविष्य के लिये डाल रखे हैं। जब पक जायेंगे तब उनको लिया जायेगा। कुछ का फल सुना दिया गया और जैसा जिस प्रकार दण्ड उचित समझा गया दिया जा रहा है।

यदि वृक्ष के फल का दृष्टान्त दिया जाय तो यों कहेंगे कि एक वृक्ष का फल प्रत्यक्ष रूप से हमारे समक्ष है। हम फल पा रहे हैं। परन्तु कुछ ऐसे भी हैं जिनके पकने में बहुत समय लगेगा।

इससे एक बात स्पष्ट है। भिन्न भिन्न कर्म पकने के लिये भिन्न भिन्न समय लेते हैं। कोई दो मास में पकता है जैसे पालक का शाक, कोई तीन चार वर्ष लेता है जैसे अमरूद्ध, नारंगी और कुछ बहुत अधिक समय लेते हैं जैसे कटहल। यदि ऐसे कर्म हैं जो दो तीन जन्में में पक सकें तो ऐसा कर्म क्यों नहीं जिसके पकने में तीन चार मास ही लगें और उसका फल उसी जन्म में क्यों न होना चाहिये। आपकी धारणा के अनुसार तीन अवस्थायें ध्यान में आ सकती हैं:-

(१) एक जन्म के कर्मों का फल अवश्य ही उसके अगले जन्म में मिल जाय। जैसे जनवरी की नौकरी का पूरा वेतन फरवरी में मिल जाता है।

(२) कुछ कर्मों का फल अगले जन्म में मिले और कुछ ऐसे भी कर्म हों जिनका फल तीन चार जन्मों के पश्चात् मिले।

(३) कुछ ऐसे भी कर्म हो जिनका फल उसी जन्म में मिल जाय।

आप पहली दो बातों को तो मानेंगे ही फिर तीसरी को क्यों न मानें? इसके मानने में क्या आपत्ति है?

प्रश्न ९४ इससे योगदर्शन के सूत्र का विरोध होगा जिसमें लिखा है कि जाति, आयु और भोग कर्म के विपाक पर मिलते हैं। यहाँ 'जाति' शब्द 'जन्म' का द्योतक है। अत: सिद्ध है कि हम अपने इस जन्म के किये हुये किसी कर्म का फल इस जन्म में नहीं पा सकते।

उत्तर-योगसूत्र में यह तो नहीं कहा गया है कि इस जन्म के किये कर्म का फल इस जन्म में मिल ही नहीं सकता। वहाँ 'जन्म' को नहीं अपितु कर्म के विपाक (पक जाने को कारण बताया गया है। सब कर्म एक ही काल में नहीं पकते। भिन्न भिन्न कर्मों के विपाक के लिये भिन्न भिन्न काल-परिणाम की आवश्यकता होती है। हाँ यह अवश्य है कि जो जन्म हमको इस समय मिला है उसके कारण वह ''कुछ कर्म'' होंगे जो इस जन्म से पूर्व किये गये। 'कुछ' शब्द का प्रयोग आवश्यक है क्योंकि यह नहीं कहा जा सकता कि इस जन्म के होते ही पिछले सब कर्मों का भुगतान हो चुका और अब कोई कर्म भोग के लिये शेष नहीं है।

प्रश्न ९५ सूत्र में केवल एक 'फल' न कहकर जाति, आयु, भोग तीन शब्दों का प्रयोग क्यों किया?

उत्तर यह अच्छा प्रश्न है। इसके विषय में कुछ ऊपर भी कहा जा चुका है। हमको केवल फल ही नहीं भोगना अपितु कर्म भी करना है। पिछले कर्मों का फल भी इसलिये नहीं मिलता कि हम उसको भोग कर बैठ रहें और हमारे जीवन (अस्तित्व) का अन्त हो जाय। सान्त कर्मों का फल अनन्त तो नहीं होगा। फल भी इसीलिये दिया गया है कि वह उच्चतर कर्मों के करने का क्षेत्र तैयार कर सके। अत: जाति या जन्म का अभिप्राय है उन परिस्थितियों से जिनमें हमको आगे काम करना है। लोग जन्म और जाति का संकुचित अर्थ लेते रहे हैं अर्थात् कुत्ता, बिल्ली, साँप या मनुष्य की योनि मात्र। वस्तुत: यह योनियाँ भी परिस्थिति का एक अंग मात्र हैं। परिस्थिति में अन्य कई चीजें शामिल हैं जो सब 'जाति' के अन्तर्गत गिननी चाहिये। 'आयु' का अर्थ काल की 'इयत्ता' है। और भोग का अर्थ है उन परिस्थितियों का हमारे मन पर प्रभाव जिसका सहयोग या असहयोग (अनुकूल्य या प्रतिकूल्य) करके हमको अगला कर्म करना है। भीरु लोग दु:ख या आपत्ति की अनुभूति से दब कर बैठे रहते हैं और कर्त्तव्यच्युत हो जाते हैं। वीर पुरुष उनका सामना करके आगे चल पड़ते हैं।

प्रश्न ९६ जब जाति आयु और भोग नियत हो गये तो हमको इनके बदलने का प्रयास करना व्यर्थ है। जो होना है सो होकर रहेगा। उसमें रत्ती भर भेद नहीं हो सकता। यदि हमारे भाग्य में है कि हमारी एक स्त्री मर जाय और दूसरी से विवाह हो तो होकर रहेगा। यदि स्त्री के भाग्य में वैधव्य बँधा है तो वह विधवा होगी। यदि हमारे मृत्यु ४० वर्ष की आयु में होनी है तो होगी चाहे हम कुछ भी क्यों न करें। तुलसीदास जी स्पष्ट कहते हैं:-

''हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि हाथ''

उत्तर आप अपने प्रश्न को सीधे मार्ग पर न चला कर इधर उधर ले गये। हमने पिछले प्रश्नोत्तरों में बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया था और आपने स्वीकार भी कर लिया था। अब फिर आपने उस निश्चय के विरुद्ध वही पुरानी अनिश्चित बातें पकड़ लीं।

तुलसीदास तो केवल यह कहते हैं कि हानि, लाभ, जीवन, मरण, यश अपयस को देने वाला ईश्वर है। वह यह नहीं कहते कि ईश्वर अपनी इच्छा मात्र से जो चाहे दे देता है। ईश्वर फल का दाता है परन्तु कर्म के अनुसार ही हानि लाभ भी आप के कर्मों से और यश, अपयश भी आप के कर्मों से। यह तीनों द्वन्द्व अर्थात् हानि लाभ, जीवन-मरण, यश-अपयश केवल फल के रूप मात्र है।

दूसरी मुख्य और नोट करने की बात यह है कि फल की इयत्ता पिछले कर्मों पर रख दी गई। यह तो नहीं कहा कि नये कर्म इयत्ता में भेद नहीं डाल सकेंगे। यह तो आपने कल्पना से जोड़ लिया। यदि पिछले कर्म ही होते और नये कर्म का सर्वथा अभाव होता तो फल उतना ही रहा अधिक न रहता परन्तु जीव का कर्तृव्य तो कभी नष्ट नहीं होता। यदि शुभ कर्म न करेगा तो अशुभ करेगा। कर्तव्य न करना भी उतना पाप है जितना अकर्तव्य का करना। इसलिये जब आप नये कर्म करते हैं और उनका विपाक भी उनकी अपेक्षा से होता रहता है तो पिछले कर्मों से कमाये हुये फलों की इयत्ता में भी भेद हो ही जाना चाहिये। न्याय और तर्क से यह सिद्ध होता है। यदि आपकी पहली स्त्री मर गई तो उसके मरने में आप के तथा उसके कर्मों के आधार पर! परन्तु आपका दूसरा विवाह करना तो आपका कर्म है। आप इसको जान बूझकर कर रहे हैं। चाहे करें, चाहे न करें। इसलिये यदि इस नये कर्म का आप पिछले भोग से सम्बन्ध लगाकर अपनी वासना के लिये बहाना ढूँढना चाहते हैं तो यह बड़ी भूल है। (क्रमश)

पृष्ठ 2 का शेष-ज्ञानातिरिक्तवस्तुसदद्विवेचनम्

सहचरोऽस्ति तु ज्ञानम् अर्थ विसहचरं स्वप्नादौ कल्पितम्, अनया दिशा ये वस्तुस्वरूपमह्नवते ज्ञानपरिकल्पनामात्रं वस्तु स्वप्नविषयोपमं न परमार्थ-तोऽस्तीति।(यो० ज० ४।१४)।।

ज्ञान के बिना अर्थ नहीं देखा जाता किन्तु अर्थ के बिना ज्ञान स्वप्न में देखा जाता है। जब अर्थ के बिना भी ज्ञान रह सकता है तो जाग्रद् अवस्था में भी अर्थ के बिना ही विविध प्रकार का ज्ञान ही है। एक बात और भी है कि ज्ञान और अर्थ भिन्न भिन्न काल में प्रतीत नहीं होते। एक साथ ही दोनों की प्रतीति होती है अर्थात् ज्ञान के अप्रतीति समय में अर्थ की भी अप्रतीति होती है और अर्थ के अप्रतीति काल में ज्ञान की भी अप्रतीति होती है। जो यह ज्ञान और अर्थ पृथक् पृथक् होते तो इनकी प्रतीति भी भिन्न भिन्न होती इससे भी ज्ञान से पृथक् अर्थ की सिद्धि नहीं होती। जैसे अर्थ और ज्ञान में जो भेद प्रतीति है वह भ्रम ही समझना चाहिये। जैसे दो चन्द्रों की प्रीति भ्रम है यथार्थ चन्द्र एक ही है और यदि कोई कहे कि ज्ञानों में परस्पर भेद है जैसे पर्वतज्ञान, सूर्यज्ञान, चन्द्रज्ञान, हस्तीज्ञान आदि, क्यों प्रतीत होते हैं, तो यह सब अनादि वासना से प्रतीत होते हैं। जैसे स्वप्न में बिना अर्थ वासना की विचित्रता से ज्ञान की विचित्रता को सभी स्वीकार करते हैं, किन्तु अर्थ भेद से ज्ञान वैचित्र्य विज्ञानवादी स्वीकार नहीं करते क्योंकि वे बाह्य अर्थ मानते ही नहीं, इससे भी बाह्यार्थ का अभाव सिद्ध होता है।

समाधान-ते तथेति। अपने महान् स्वरूप से सामने प्रत्यक्ष उपस्थित जो वस्तु उसके स्वरूप को ग्रहण करके भी, अप्रमाण स्वरूप जो विकल्पज्ञान उसके द्वारा वस्तुस्वरूप को निषेध करने वाले क्योंकर यथार्थवादी हो सकते हैं? इस प्रकार तो अनृत उन्मत्तप्रलापी भी यथार्थवादी कहला सकते हैं।

बाह्यार्थ का निषेध क्यों ठीक नहीं इस पर पतञ्जलि मुनि लिखते हैं-

'वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्त-योर्विभक्तः पन्थाः'। कै० पु० सू० १५।। वस्तु के एक होने पर भी उसके विषय में चित्तो में भेद होने से चित्त और वस्तु पृथक् पृथक् हैं ऐसा बोध होता है। व्यास जी इस सूत्र के भाष्य में इस प्रकार लिखते हैं-अनेक चित्तों की आलम्बनीभूत एक वस्तु भी होती है (जो वस्तु चित्त के सामने होने पर जिस वासना को प्रकट करती है वही वस्तु इस वासना की आलम्बन कहलाती है)। वह एक वस्तु न तो एकचित्त की कल्पनामात्र है, न ही अनेकों चित्तों की कल्पना मात्र है किन्तु उस वस्तु की स्वतन्त्र सत्ता है। क्योंकि एक वस्तु से ही धर्म के कारण धर्मात्मा को सुख प्राप्त होता है, और अधर्म के निमित्त होने पर पापी को उसी से दुःख प्राप्त होता है, और एक ही वस्तु अज्ञानी को मोह का कारण बनती है और तत्त्वज्ञानी को उसी वस्तु से उदासीनता होती है। अब बताओ कि किसके चित्त से? धर्मात्मा के चित्त से या पापी के चित्त से? अज्ञानी के चित्त से या तत्त्वज्ञानी के चित्त से?। क्योंकि अन्य के चित्त से कल्पित वस्तु से दूसरे के चित्त में उसका ज्ञान नहीं होता। इसलिये वस्तु और ज्ञान का ग्राह्य और ग्रहणभेद है अर्थात् इन्द्रियों द्वारा अर्थ के साथ सम्बन्ध होने पर ज्ञान होता है। इसलिये ज्ञान और अर्थ एक कभी नहीं है। अपितु अर्थ ही शब्द और ज्ञान का आलम्बन है। वासना का आलम्बन भी अर्थ ही है।

नाभावोऽनुपलब्धेः।। वै० २।२।३०।। जो यह कहा कि अर्थ के बिना भी ज्ञान में वैचित्र्य वासनावैचित्र्य से हो सकता है, इसका उत्तर है-तुम्हारे मत में बाह्य अर्थों की अनुपलब्धि होने से वासना की सत्ता ही सिद्ध नहीं होती तो वासना का वैचित्र्य कैसा, और जब न वासना सिद्ध हुई न उसका वैचित्र्य, तब वासनावैचित्र्य से ज्ञानवैचित्र्य वैसा ही है जैसी आकाश, पुष्पों की माला। क्योंकि भिन्न भिन्न अर्थों की उपलब्धि से ही भिन्न भिन्न वासना होती हैं। अर्थों की अनुपलब्धि में किस निमित्त से भिन्न भिन्न वासना होगी। व्यास जी लिखते हैं-

'यस्तु श्वेतोऽअर्थः स शब्दप्रत्यययोरालम्बनीभूतः' जो श्वेतरूप अर्थ है वही श्वेत शब्द के प्रयोग का और श्वेताकार ज्ञान का निमित्त है और ज्ञान आत्मा में होता है यह तीनों शब्द, अर्थ, ज्ञान एक दूसरे से भिन्न हैं, जैसे ज्ञान तो आत्मा का गुण है और शब्द आकाश का गुण है और अर्थ बाह्य पदार्थ होते हैं-द्रव्य, गुण, कर्म, इत्यादि।

प्रश्न-किन्हीं का यह पक्ष भी है कि-

'ज्ञानसहभूरेवार्थो ऽभोग्यत्वात् सुखादिवत्' ज्ञान के समय ही अर्थ होता है, भोग्य होने से सुखादि की तरह अर्थात् जिस समय हमको सुख दुःख प्रतीत होते हैं उस समय उनकी सत्ता होती है, जब प्रतीत नहीं होते सुख दुःख भी नहीं होते। इसी प्रकार सभी पदार्थ प्रतीति से पूर्व नहीं होते और प्रतीति के बाद भी नहीं रहते।

उत्तर इसका उत्तर इस योग सूत्र द्वारा दिया गया है-

'न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात्'

यदि एक विज्ञान के साथ ही वस्तु होती है तो ज्ञान के नष्ट हो जाने पर बिना प्रमाण के ही वह वस्तु कैसे नष्ट हो गई और ज्ञान होने पर वह वस्तु पुनः कैसे उत्पन्न हो गई क्योंकि प्रत्येक वस्तु अपने अपने कारण से उत्पन्न और नष्ट होती है, जैसे मकान, पत्थर, मिट्टी आदि के यथावत् संयोग करने से बनता है और मिट्टी पत्थर आदि के अलग करने से नष्ट होता है। इसलिये भोग्य होने मात्र से ज्ञानकाल ही में वस्तु की सत्ता मानना आगे पीछे नहीं, यह बात प्रमाण विरुद्ध है।

और भी, वस्तु के सामने का भाग ही दीखता है पृष्ठादि पीछे का भाग नहीं दीखता तो फिर पृष्ठादि के न होने से उदरादि का भी ग्रहण न होना चाहिये किन्तु ग्रहण होता है इसलिये पृष्ठादि भाग भी न दीखने पर भी अवश्य है। इसलिये ज्ञान न होने से पूर्व और ज्ञान के न रहने पर भी वस्तु की सत्ता का निषेध नहीं किया जा सकता है। इसलिये ज्ञान से भिन्न अर्थ सभी पुरुषों के लिये है। चित्तों की स्वतन्त्र सत्ता प्रत्येक पुरुष के लिये अलग अलग है और चित्त और अर्थ के साथ सम्बन्ध होने से जो ज्ञान होता है वही पुरुषों का भोग है। न्याय दर्शन में भी बाह्यार्थ निषेध का निम्नप्रकार से पूर्वपक्ष उठाकर खण्डन किया है।

प्रश्न-जो आप ज्ञान की सत्ता के द्वारा 'ज्ञान के विषय हैं' ऐसा मानते हो सो यह आपकी मिथ्याबुद्धि है। यदि यह बुद्धि यथार्थ होती तो बुद्धि से ही विवेचन करने पर वस्तुओं की यथार्थता जानी जाती है किन्तु-

'बुद्धया विवेचनात्तु भावानां याथात्म्यानुपलब्धिस्तन्त्वपकर्षणे पटसद्भावानुपलब्धिवत्तदनुपलब्धिः'। न्या० ४।२।२६।। जैसे कपड़े में से एक एक तन्तु अलग करने पर कपड़ा कोई अलग वस्तु उपलब्ध नहीं होती जिसको कपड़ा समझा जाये। जब तन्तुओं से अलग कपड़ा कोई वस्तु नहीं फिर भी जो 'कपड़ा' ऐसा ज्ञान होता है वह मिथ्या ज्ञान ही है। इसी प्रकार जगत् के सब पदार्थों का विवेचन करने से ज्ञान होता है कि यह जगत् भी कोई वस्तु नहीं है।

उत्तर-**'व्याहतत्वादहेतुः'** ४।२।२७।। जब ज्ञान से अतिरिक्त कोई अर्थ ही तुम नहीं मानते तो फिर बुद्धि के द्वारा पदार्थों का विवेचन करने पर पदार्थविषयक प्रतीति मिथ्या सिद्ध होती है, ऐसा कहना परस्पर विरुद्ध है। यदि बुद्धि से पदार्थों का विवेचन करते हैं तो इसमें तीन वस्तुऐं आती हैं-एक विवेचन करने वाला (कर्त्ता), दूसरी जिस बुद्धि से विवेचन करता है वह (करण) और तीसरी विवेचन क्रिया। जब तुम्हारे कहने से ही तीन वस्तुएँ सिद्ध होती हैं तो फिर जब कोई पदार्थ ही नहीं है तो विवेचन किसका और यदि बुद्धि से विवेचन करते हो तो सर्वपदार्थों का अभाव न हुआ। और जो तन्तुओं से अलग कपड़ा कोई नहीं ऐसा कहते हो तो इसका उत्तर है **'तदाश्रयत्वा-दपृथग्ग्रहणम्'** ४।२।२८।। उत्पन्न हुआ द्रव्य जिन कारण द्रव्यों से मिलकर बनता है उन कारण द्रव्यों के आश्रय में ही उसकी उपलब्धि होती है, अर्थात् वह कार्य द्रव्य कारण द्रव्य के आश्रित ही रह सकता है पृथक् नहीं।

आर्य समाज वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर का वार्षिक उत्सव सम्पन्न

आर्य समाज, वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर का वार्षिक उत्सव 15 मई से 21 मई 2023 तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर श्री निर्मल आर्य जी ध्वजारोहण करके मुख्य कार्यक्रम का शुभारम्भ करते हुये जबकि चित्र दो में श्री जगत वर्मा जी भजनोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब भजन प्रस्तुत करते हुये। चित्र तीन में स्वामी सदानन्द जी अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर आई हुई आर्य जनता को सम्बोधित करते हुये।

आर्य समाज वेद मंदिर आर्य नगर जालन्धर का शानदार समारोह बड़े हर्षोल्लास के साथ 15 मई से 21 मई 2023 तक मनाया गया। 15 मई से 20 मई तक पारिवारिक सत्संग हुये। श्री जगत वर्मा जी संगीत रत्न ने बहुत ही सुन्दर दिल को छू लेने वाले भजनों द्वारा मन को जीत लिया। श्रद्धेय श्री विजय कुमार जी शास्त्री वैदिक प्रवक्ता आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने बहुत ही प्रभावशाली ढंग से महर्षि दयानन्द जी सरस्वती के सामाजिक और क्रान्तिकारी विचारों और सच्चे ईश्वर को कैसे पाया जाता है, लोगों को समझाया। वेद प्रवचन और भजनों द्वारा लोगों को मंत्रमुग्ध करते हुये इन दोनों वक्ताओं के प्रभाव के कारण पारिवारिक सत्संग में हाजिरी बड़े-बड़े समारोह जैसी होती रही। सत्संग वाली नगरी चल रे मना,मिल कर सत्संग लाया प्रभु जी तेरे भक्तों ने, न कोई साथी सखा सहेला, विजय के पथ पर चला अकेला, के भजन पर लोग मस्ती में झूमने लगते थे। सारा नगर ऋषि मेलों के रूप में सातों दिन चमकता रहा और सातों दिन ऋषि लंगर भी चलता रहा। सारे आर्य नगर में लाइटें, ओ३म् ध्वज और कारपोरेशन के ध्वज, जाल आदि से सजावट की गई थी। प्रतिदिन पारिवारिक सत्संग से पूर्व श्री विजय कुमार शास्त्री एवं पंडित हरिशंकर द्वारा पवित्र वैदिक यज्ञ करवाया जाता रहा और उन्होंने बताया के आज के समय में और भी यज्ञ करना अनिवार्य हो गया है। यज्ञ के महत्व को भी समझाया जाता रहा और विशेष आशीर्वाद भी शास्त्री जी द्वारा आई हुई संगत को मिलता रहा। शनिवार को विशेष कार्यक्रम स्वर्गीय श्री सतपाल जी की याद में भजन संध्या का आयोजन किया गया जिसमें वर्षा, पूजा, दिव्या, आरती, रंजना बस्ती बाबा खेल, सुरिन्द्र कुमार आर्य एवं श्री जगत वर्मा जी ने अपने अपने भजन प्रस्तुत किये। 21 मई को विशेष कार्यक्रम आरम्भ हुआ। यज्ञ के ब्रह्मा श्री विजय कुमार जी शास्त्री महोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब द्वारा बहुत ही सुन्दर और प्रभावशाली ढंग से यज्ञ करवाया गया। श्री विनोद कुमार, श्रीमती सरोज बाला न्यू दियोल नगर वालों को मुख्य यजमान बनने का गौरव प्राप्त हुआ।

10.50 बजे ध्वजारोहण श्री निर्मल आर्य बस्ती बाबा खेल जालन्धर को करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फूलमाला से उनका भव्य स्वागत किया गया। इसके पश्चात प्रात:राश का प्रबन्ध किया गया था। इस अवसर पर स्वामी सदानन्द जी अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर का भी आगमन हुआ जिससे कार्यक्रम की शोभा और बढ़ गई। आर्य समाज के प्रधान वेद आर्य और समाज के अधिकारियों ने फूल मालाएं पहना कर स्वामी जी का जोरदार स्वागत किया। मुख्य कार्यक्रम की अध्यक्षता पूजनीय स्वामी सदानन्द जी महाराज अध्यक्ष दयानन्द मठ दीनानगर द्वारा की गई। खचाखच भरे पंडाल में बहन रंजना आर्य बस्ती बाबा खेल, पूजा, वर्षा, आरती, दिव्या के द्वारा भजनों का कार्यक्रम सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया गया। इसके पश्चात पंडित सुरिन्द्र कुमार आर्य बस्ती बाबा खेल जालन्धर के बहुत ही सन्दर भजन हुये। श्री सुरेश कुमार शास्त्री का सुन्दर उपदेश सुनने को मिला। इसके पश्चात आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी के ईश्वर भक्ति, ऋषि दयानन्द के भजन व देश भक्ति के गीतों ने लोगों को तालियों के साथ झूमने पर मजबूर कर दिया। इनको सुनने के लिये इतनी भीड़ इकट्ठी हो गई थी कि कोई स्थान रिक्त नहीं रहा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मंत्री श्री सुदेश कुमार जी, मंत्री श्री रणजीत आर्य जी, श्री बलविन्द्र शास्त्री जी, आर्य समाज वेद मंदिर भार्गव नगर के प्रधान श्री कमल किशोर जी पधारे और अपना अपना संदेश लोगों को दिया। पंडित मनोहर लाल, श्री बनारसी दास, श्री मनोहर लाल डोगरा, श्री रमेश भगत जी

§âU · ¤æØü·¤ ×ô¸ȤàæÙ MÂ âðÅŠæÚUÙ §âU · ð ¥ÜæßææÁæÜ‹ŠæÚU ·¤è ¥æØüâ×æÁ ÕSÌè Õæßæ¹ðÜ,¥æØüâ×æÁ ÖæÚ»ß Ù»ÚU¥æØü â×æÁ ÕSÌè ÎæÙàæ×¢Î æ¥æØüâ×æÁ ÎØæÙ´Î Ù»ÚU»ôÂæÜ¥æØüâ×æÁ âÎ Ù»ÚU ÁæÜ‹ŠæÚU¥æØüâ×æÁ »æ¢ŠæèÙ»ÚU, ¥æØü â×æÁ »æ¢ŠæèÙ»ÚU, ¥æØüâ×æÁ »Ïæ·¤ âðÆè ¥æØüÁÙ ÂŠææÚUð ¥ÂÙð¥ ŠæÿæØæØ Öæ»èÎæÚUè×ôߢ¼æèè â΢Ø ãËÎèÎèÜè ÖæÙ ÌÍ · ¤æÜðÁ ¤ÂãÜè¥æØüâ×æÁ ãæÙÚUæ»æâãæØ¥æÖæÚU ÂýÎçàæüÌ ·¤ÚU ÚUãð Íð ×ÁÎêÚUæ ãæÜæÁ â ·¤è »ôÂæÜ Ù»ÚU â ÕÜ ÙæÚUæØ ãU §â · ð ·¤ËØæ‡æ¥æØüâ×æÁ · ¤æØü·¤×æð ·¤ô ×æÜæ¥æ¢·¤æð »ÚUçàæÌèè ÌÍæ ·¤çƒæ¿ãÙ ¿ÁæèÅè ãñÂæÁ àææÜæ »æÌèÙæ çÎÕâ Ùð â Øæ×è ÌÍæ ÕÿæÚU ÁæÚUè ÎçÿæÙ ·¤æÚUðÅè ãð ã ÂæÙèU ·¤ô ÖæßÙæ ¥æÁæÎè ÖæÚUÌ · ð ÁæðÜè ÂýàæÙ · ð ÎàæÙ ÎðàæÖçÿ»Ø

इतने सुन्दर कार्यक्रम को किया है। यहां के पूर्व प्रधान श्री सतपाल व बाबू सरदारी लाल जी आर्य रत्न को याद करते हुये श्रद्धा सुमन अर्पित किये। आर्य समाज वेद मंदिर, आर्य नगर की तरफ से स्वामी सदानन्द जी को महर्षि दयानन्द सरस्वती व गायत्री मंत्र का स्मृति चिन्ह देकर केसरी शाल व बुका भेंट किया गया और स्वामी जी से आशीर्वाद लिया गया। इस अवसर पर बहुत से विशेष आमंत्रित सदस्य एवं विद्वानों एवं वक्ताओं को स्मृति चिन्ह देकर सम्मानित किया गया। आर्य समाज के प्रधान श्री वेद आर्य जी ने बताया कि 1 मई 1976 को लाला जगत नारायण जी द्वारा इस आर्य समाज का नींव पत्थर रखा गया था। मैं धन्यवाद देना चाहता हूं उन लोगों को जिन्होंने यह आर्य समाज बनाई है। भाई तिलक राज आर्य का धन्यवाद किया गया। बाबू सरदारी लाल जी आर्य रत्न और श्री सतपाल आर्य पूर्व प्रधान को श्रद्धा सुमन भेंट किये गये। अंत में प्रधान श्री वेद आर्य जी ने अपनी पूरी टीम श्री सरदारी लाल, श्री तिलक राज आर्य, अनिल आर्य, श्री कमल मौखा, श्री तरसेम लाल, श्री ओम प्रकाश मौखा, श्री योगेश कुमार, सतपाल मेतला, जगदीश कौशल, सुरिन्द्र कुमार विशाल सिंह, पंडित हरिशंकर, दीपक डोगरा, राजेश कुमार का भी धन्यवाद किया। शांति पाठ के पश्चात हजारों लोगों ने ऋषि लंगर ग्रहण किया और ऋषि का गुणगान किया गया।

--वेद आर्य, प्रधान आर्य समाज

वेदवाणी

जिह्वा से प्रभु-नामोच्चारण

नामानि ते शतक्रतो विश्वाभिर्गीर्भिरीमहे।
इन्द्राभिमातिषाह्ये।।

-ऋ०:३।३७।३; अथर्व० २०।१९।३

विनय-हे परमेश्वर! मुझे यह वाणी तेरे नामोच्चारण के लिए ही मिलती है। मैं निरन्तर तेरे पवित्र नामों का उच्चारण करता रहता हूँ। तेरी दी हुई इस वाणी से मैं अन्य कुछ कर ही नहीं सकता; कोई भी निरर्थक बात, कोई भी अनीश्वरीय बात, मेरी वाणी से नहीं निकल सकती। मेरे एक-एक कथन में तेरी ही धुन होती है, तेरा ही निवास होता है। हे इन्द्र! मैं इस प्रकार अपनी सब वाणियों से नानारूप में तेरे ही नामों का कीर्तन करता रहता हूँ। यदि मैं ऐसा न करूँ तो मैं अपने शत्रुओं को कैसे पराजित कर सकूँ? उनसे कैसे रक्षित रहूँ? तेरे पवित्र नामोच्चारण करता हुआ ही मैं निरन्तर सब शत्रुओं पर विजयी हुआ हूँ और हो रहा हूँ। मेरा सबसे बड़ा शत्रु ''अभिमाति'' है, अभिमान है। आजकल इस महाशत्रु को मार डालने के लिए विशेषतया तेरा नाम मेरा महा-अस्त्र हो रहा है। जब मनुष्य के काम, क्रोध आदि अन्य शत्रु जीते जा चुके होते हैं, मनुष्य आत्मिक उन्नति की ऊँची अवस्था को पहुँचा होता है, तब भी यह अभिमान, अस्मिता, अहङ्कार, मनुष्य का पीछा नहीं छोड़ता। यही है जो अविद्या का कुछ अंश शेष रहने तक भी आत्मा का मुक़ाबला करता रहता है। हे मेरे परमेश्वर! यही है जो मुझे अन्त तक तुमसे जुदा किये रहता है। जब मनुष्य खूब उन्नत हो जाता है, तब उसे और कुछ नहीं तो अपनी उन्नतावस्था का, अपने पुण्यात्मा होने का अभिमान हो जाया करता है। यह अभिमान ही मनुष्य को बिल्कुल पतित कर देने के लिए पर्याप्त होता है। हे शतक्रतो! हे अनन्तवीर्य! हे अनन्तप्रज्ञ! इसीलिए मैं निरन्तर तेरे नाम को जपता रहता हूँ, जीभ पर तेरा परमपवित्र नाम रखे फिरता हूँ। जब तनिक भी अभिमान मन में आता है ''यह बड़ा भारी काम मैं कर रहा हूँ'', ''यह मैंने किया'' तो तुरन्त मेरे हाथ जुड़ जाते हैं और मुख से तेरा नाम निकल पड़ता है। इस प्रकार इस महाशत्रु से मेरी रक्षा हो जाती है। तेरा नाम मुझे तुरन्त नमा देता है, तेरा स्मरण आते ही मैं अवनत-शिर होकर भूमि पर मस्तक टेक देता हूँ। तब उस महाबली अभिमान को क्षण भर में विलीन हो चुका पाता हूँ, चारों और कोसों दूर तक उसका पता नहीं होता; सब पृथिवी पर तुम-ही-तुम होते हो और मैं तुम्हारे चरणों में। मैं उस समय तेरे पृथिवीरूप विस्तृत चरणों में लगी हुई धूल का एक परम तुच्छ कण बनकर निरभिमानता के परम-परम सात्त्विक सुख का उपभोग पाता हूँ। हे नाथ! तेरे नाम की अपार महिमा का मैं क्या वर्णन करूँ।

स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब की तरफ से मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक प्रेम भारद्वाज द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर पंजाब से मुद्रित एवं गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से प्रकाशित। सम्पादक-प्रेम भारद्वाज
पीआरबी एक्ट के तहत प्रकाशित सामग्री के चयन हेतु उत्तरदायी किसी विवाद का न्यायिक क्षेत्र जालन्धर होगा। आर एन आई संख्या 26281/74 E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org